SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

LorU=rk l?k"kZ e: ouoklh ukjh 'kfä

equUæ flag] (Ph.D.), एशियन कल्वर विभाग
शिया पी. जी. कॉलेज, लखनऊ, उत्तरप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
equUæ flag] (Ph.D.), एशियन कल्वर विभाग
शिया पी. जी. कॉलेज, लखनऊ, उत्तरप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 13/03/2023
Revised on : -----
Accepted on : 20/03/2023
Plagiarism : 03% on 13/03/2023

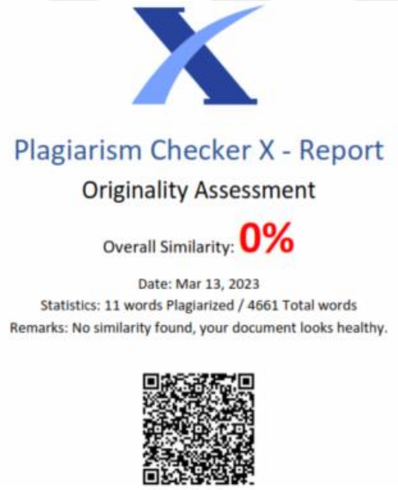

'kks/k lkj

भारतीय सामाजिक पितृसत्तामक व्यवस्था में स्त्रियों की भूमिका की सदैव उपेक्षा की गयी है। स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित इतिहास लेखन की ओर यदि दृष्टिपात करें तो विभिन्न वनवासी क्षेत्रों में हुए संघर्षों में अपने पारम्परिक हथियारों व कुशल युद्धनीति से औपनिवेशिक शक्ति को पछाड़ने वाली वनवासी स्त्री शक्तियों को पूर्णतः विस्मृत किया गया है। वनवासी संघर्षों का मुख्य आधार उनकी संगठित जनशक्ति रही है जिसमें महिलाओं व पुरुषों को समान स्थान दिया जाना चाहिए। वनवासी संग्रामी स्त्रियों के योगदान के चर्चा के बिना स्वतन्त्रता संग्राम का लेखन अधूरा है। अतः आवश्यकता है कि ब्रिटिशकालीन स्वतन्त्रता संघर्षों की एक ऐसी श्रृंखला का लेखन किया जाये जिसमें वनवासी स्त्रियों के योगदान से सम्बंधित विषयों कों समाहित कर उनके साथ न्याय किया जा सके। अब तक इन वनवासी स्त्री योद्धाओं को इतिहास लेखन में अन्य की भाँति गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ है, जबकि आज भी वनवासी समाज विभिन्न उत्सवों, लोक गीतो व श्रुतिकथाओं के माध्यम से अपने ऐतिहासिक धरोहर को संजोये हुए है। अतः इस शोधपत्र में प्रारम्भिक स्तर में हुए स्वतन्त्रता आन्दोलनों व विस्मृत वनवासी स्त्री योद्धाओं की भूमिका की चर्चा की गयी है।

eq[; 'kCn

ouoklh] ukjh] 'kfDr] LorU=rk-

वर्तमान भारत युवा पीढ़ी जब ब्रिटिश कालीन संघर्षों की चर्चा करती है तो महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह, रानी लक्ष्मी बाई व बिरसा मुण्डा जैसे महान स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ कदम से कदम मिलाकर, विषम परिस्थितियों से अपने नेतृत्वकर्ताओं को उबारने वाली एक शक्ति का परिचय अनायास ही लुप्त हो

जाता है जिसने वास्तव में स्वतन्त्रता संघर्षों के सकारात्मक परिणामों की नींव रखी तथा अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। यह है वनवासी नारी शक्ति। संथाल, भील, कोल, उरांव जैसे अनेकों वनवासी समुदाय की महिलाओं ने पुरुर्षों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया, साथ ही विभिन्न स्तरों पर उनको सहायता भी प्रदान की। ब्रिटिश शासकों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन दोहन व शोषणात्मक गतिविधियों के परिणामस्वरुप आक्रोश का ज्वार उठना स्वाभाविक था। अतः सन् 1766 में प्रारम्भ हुआ पहाड़िया संघर्ष, सन् 1769 में चुआड़ विद्रोह, सन् 1789 में हुआ खासी संघर्ष, सन् 1821 में लरका संघर्ष, सन् 1879 में नागा संघर्ष तथा सन् 1900 में बिरसा मुण्डा का उलगुलान आदि स्वतन्त्रता आन्दोलन हुए जिनमें वनवासी महिलाओं ने अपनी शक्ति का परिचय दिया। इन संघर्षों के समय वनवासी महिलओं ने कहीं प्रत्यक्ष वनवासी योद्धाओं का नेतृत्व किया तो कहीं अप्रत्यक्ष रुप से सैनिकों की सहायता की। हथियारों की तस्करी व भोज्य सामग्री के सुरक्षित आवागमन में वनवासी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वनवासी योद्धा धनुष, बाण व भाला जैसे पारम्परिक हथियारों का उपयोग करते थे। अतः वनवासी महिलायें धनुर्धारियों द्वारा पहनी जाने वाली उंगली की पट्टी को अपने पेट के चारो ओर संलग्न करके वनवासी सैनिकों के एक ईकाई से दूसरे ईकाई तक यात्रा करती थी, जिस कारण समय पर हथियारों की आपूर्ति सम्भव हो पाती थी।

वनवासी समाज आज भी अपनी वीरांगनाओं को सम्मान पूर्वक याद करता है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण जनी–शिकार उत्सव है। वर्तमान समय में 12 वर्ष में एक बार होने वाला जनी–शिकार उत्सव वनवासी नारी के शौर्य का प्रतीक है। जनी शिकार सिनगी दई, कैली दई और चम्पु दई की वीरता, अद्भुत युद्ध कौशल, बलिदान, राजनीतिक चतुराई व अदम्य साहस का परिचायक है। उरांव समाज में वीरता के प्रतीक जनी शिकार उत्सव रोहतासगढ़ की लड़ाई में वनवासी महिलाओं के बलिदान की स्मृति को आज भी जीवित रखे हुए है। सोन नदी के तट पर स्थित कैमूर पर्वतमाला के रोहतास पहाड़ के ऊपर उरांव वनवासी समुदाय का किला रोहतास गढ़ था। सहसराम (वर्तमान सासाराम) के पठान हसन सुर का बेटा फरीद खान (बाद में शेरशाह के नाम से चर्चित) दिल्ली पर अधिकार की इच्छा रखता था। अतः दिल्ली पर कूच से पहले उसने अपने निवास स्थान की सुरक्षा को और मजबूत करने के लिए निकटवर्ती क्षेत्रों को अपने नियन्त्रण में लेने का प्रयास करने लगा। इस प्रक्रिया का प्रथम केन्द्र बना रोहतासगढ़ का किला। जिस समय पठानों ने किले पर चढ़ाई की योजना बनाई, उस समय उरांव वनवासी समाज सरहुल पर्व मना रहा था। परम्पराओं तथा उल्लास से परिपूर्ण इस त्यौहार में उरांव पुरुष पूजा के बाद हांडिया पीने व नृत्य करने में व्यस्त थे। हँडिया पीने के कारण उरांव योद्धाओं की शौर्य शक्ति व पराक्रम निष्क्रिय था। इस समय रोहतास दुर्ग पर आक्रमण के समाचार से उरांव स्त्रियां सचेत हो गयी। शत्रुओं ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। अपनी कुशल युद्ध रणनीति का परिचय देते हुए उरांव स्त्रियों ने त्वरित निर्णय कर तीन महिला दस्तों का गठन किया।

उरांव समुदाय द्वारा पहली लड़ाई सिनगी दई के सेनापतित्व में लड़ी गयी थी। उरांव स्त्रियों ने पुरुषों का वेश धारण कर तथा माथे पर पगड़ी बांधे दुश्मनों का सामना करने के लिए तैयार हो गयी। सिनगी दई के नेतृत्व में उप–सेनापति कैली दई और चम्पु दई की महिला सेना ने किले के मुख्य फाटक पर पहुंची शत्रु सेना पर किले के ऊपर से तीरों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया। शेरशाह सूरी की सेना इस अकस्मात् वार से अचंभित व असहाय हो गई। अतः वनवासी वीरांगनाओं के समक्ष पठानों की सेना को युद्ध छोड़कर भागना पड़ा। प्रकृति पर्व सरहुल बसन्त ऋृतु में मनाया जाता है। इस पर्व के साथ वनवासी समाज का नववर्ष प्रारम्भ होता है। पतझड़ के पश्चात् पेड़ पौधों पर निकले नव पल्लव, आम्र कांजरी और सखुआ व महुआ के फूलों से सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धित हो जाता है। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के तृतीया से प्रारम्भ होकर सरहुल पर्व चैत्र पूर्णिमा तक मनाया जाता है। सरहुल पर्व में व्यस्त उराँव समुदाय शत्रुओं की कूटनीति से अनभिज्ञ था।

जब शक्ति के बल पर शत्रुओं को विजय नहीं प्राप्त हुई तब कूटनीति का सहयोग लिया गया। शत्रुओं ने लुन्दरी नामक एक ग्वालिन (दूध का वितरण करने वाली महिला) को अपना भेदिया बनाया क्योंकि वह रोहतास दुर्ग में प्रतिदिन दूध पहुँचाती थी। उसने लोभवश आक्रमणकारियों को रोहतास दुर्ग की सुरंगों व गुप्त प्रवेशद्वारों के बारे

में जानकारी दी थी, लेकिन प्रथम आक्रमण में शेरशाह सूरी को शीघ्र ही पीछे हटना पड़ा था। शेरशाह की सेना भी हार नहीं मान रही थी उन्होने सरहुल पर्व का लाभ लेने के उद्देश्य से पुनः आक्रमण कर दिया। इस बार भी उरॉव महिला सेना ने सिनगी दई के नेतृत्व में विरोधी सेना का डटकर सामना किया तथा दुश्मनों को परास्त होकर वापस जाना पड़ा। इस प्रकार महिला शक्ति के समक्ष आक्रमणकारियों को लगातार दूसरी बार हार का सामना करना पड़ा।

निराश शेरशाह सूरी के सैनिक अधिकारियों ने लुन्दरी को पुनः बुलाकर पूछताछ की तथा अपनी हार के वास्तविक कारण को जानने का प्रयास किया। लुन्दरी ने बताया कि आप जिस सेना से पराजित हुए हैं, वह वास्तव में महिलाओं की सेना थी। इस बात का परीक्षण करने के लिए लुन्दरी ने एक प्रचलित परम्परा का प्रयोग किया। उसने बताया कि यदि वास्तविकता जानना चाहते है तो सोन नदी के तट पर जाकर देख सकते हैं। पुरुष सैनिक सदैव एक हाथ से चेहरा धोते हैं लेकिन यदि वनवासी सैनिक नदी में दोनों हाथों से चेहरा धोए तो वे पुरुष वेश में महिला सेना होगी। आक्रमणकारी सेनापति ने वास्तविकता की जाँच के लिए सोन नदी के तट पर निगरानी करना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही उसे दोनों हाथों से चेहरा धोते हुए सैनिक दिखायी दिये। अब उसको विश्वास हो गया था कि वनवासी सेना में वास्तव में महिलायें हैं।

अब शेरशाह सूरी की सेना पुनः आक्रमण की तैयारी दोगुनी शक्ति के साथ करने लगी। इस तीसरी लड़ाई में वनवासी महिला सेना का नेतृत्व सेनापति सिनगी दई और उप सेनापति कैली दई व चम्पु दई ने किया। इस बार दुश्मन सेना पूरी तरह से आश्वास्त हो चुकी थी कि रोहतासगढ़ की सेना के सैनिक पुरुष वेश में महिलाएं हैं। अतः इस लड़ाई में लुन्दरी की गुप्त सूचनाओं और आक्रमणकारियों के बढ़े हुए आत्मविश्वास ने वनवासी सेना का सामना किया। वनवासी महिला सेना ने अपने पारम्परिक हथियारों तीर धनुष, ढेलपासा, भिरयो आदि से दुश्मनों को रोकने का भरसक प्रयास किया किन्तु आक्रमणकारी गढ़ की ओर बढ़ते चले गये। दुर्ग में दुश्मनों के प्रवेश से चिन्तित सिनगी कैली व चम्पु अपने वनवासी साथियों को सकुशल गुप्त मार्ग से बाहर निकालकर पलामू व छोटानागपुर की ओर बढ़ गई।

रोहतासगढ़ पर दुश्मनों का अधिकार तो हो गया लेकिन वनवासियों पर उनका नियन्त्रण न हो सका क्योंकि रोहतासगढ़ से सुरक्षित निकलकर उरॉव वनवासियों का एक समूह पलामू होते हुए छोटानागपुर में बस गया तथा दूसरा समूह गंगा किनारे होते हुए राजमहल की पहाड़ियों में रहने लगा। इस प्रकार सिनगी दई का कुशल नेतृत्व व त्वरित निर्णय दुश्मनों द्वारा गढ़ पर अधिकार करने की विजय पर भारी पड़ा। उरॉव समाज की महिलाएं आज भी अपनी शक्ति को याद करते हुए जनी शिकार का उत्सव मनाती हैं तथा इन तीन लड़ाईयों को गर्व का प्रतीक मानते हुए अपने कपाल पर तीन पड़ी लकीर के गोदने गोदवाती हैं।

fcjlk e|.Mk myx|yku dh efgyk,|

बिरसा मुण्डा के बढ़ते प्रभाव व विभिन्न क्षेत्रों में हो रही शक्तिपूर्ण गतिविधियों ने तत्कालीन ब्रिटिश प्रशासकों को चिन्तित कर रखा था। बिरसा आन्दोलन में स्त्रियों की वृहद स्तर पर भागीदारी थी जिस कारण वनवासी संघर्ष का स्वरुप निरन्तर विस्तृत होता गया। बिरसा मुण्डा का मुख्य सहयोगी गया मुण्डा का पूरा परिवार उलगुलान हेतु समर्पित था। ब्रिटिश अधिकारियों ने 06 जनवरी 1900 ई0 को गया मुण्डा के गांव एटकेडीह जाकर उसके परिवार को आत्मसमर्पण करने के लिए लेकिन पूरे परिवार की ओर से मना करने पर अधिकारियों ने घर में ही आग लगा दी, तब गया मुण्डा की पत्नी लाठी लेकर तथा उसकी दोनों बेटियों ने हाथों में तलवार व कुल्हाड़ी लेकर तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर की पूरी टीम को ललकारा था। माकी मुण्डा ने लाठी का प्रहार कर पुलिस दरोगा को कुल्हाड़ी मारा। पुत्र वधुओं ने एक हाथ में बच्चे को लेकर दौली व टांगी से प्रहार किया, किन्तु आधीनता स्वीकार नहीं की। इस घटना के बाद पूरे परिवार पर मुकदमा चलना स्वाभाविक था जिसके परिणामस्वरुप गया मुण्डा व उसके बेटे को फांसी की सजा दी गयी तथा बहादुर माकी मुण्डा को दो वर्ष का कारावास हुआ।

वनवासी महिलाओं ने बिरसा मुण्डा के अंगरक्षकों की भूमिका को सफलतापूर्वक निभाया। चम्पी व साली नामक दो वनवासी स्त्रियों ने बिरसा की अन्तिम क्षणों तक रक्षा की थी। बिरसा ने अपने अन्तिम दिन पोराहाट की

उच्च भूमि पर बिताए। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते रहे। आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव के कारण अंग्रेज भी शीघ्रातिशीघ्र बिरसा को पकड़ना चाहते थे। अतः बिरसा की गिरफ्तारी पर 500 रुपये का पुरस्कार घोषित किया गया था। उस समय कुछ मुण्डा वनवासियों को प्रलोभन देकर अंग्रेज अपनी ओर करना चाहते थे तब वनवासी महिलाओं के साहसपूर्ण निर्णय के कारण बिरसा सुरक्षित बच सके थे।

बिरसा उन दिनों अपने आन्दोलन को तीव्र करने के उद्देश्य से अपने अनुयायियों के मध्य बैठक करके अपने धर्म व अनुयायियों के लिए आचरण संहिता के बारे में निर्देश देते थे। अतः इनका आवागमन व निवास जंगल में ही होता था। सरकार ने बिरसा की गिरफ्तारी के लिए जो धनराशि निर्धारित की थी उसके लोभ में आकर मानमारु और जरीकेल गाँव के सात लोग जंगल में बिरसा की खोज करने लगे। 3 फरवरी 1900 को उन्होने देखा कि संतरा के पश्चिम स्थित जंगल के बहुत अंदर कुछ धुआँ सा उठ रहा है। उन्हें आशंका हुई कि यहाँ किसी प्रकार का शिविर लगा हुआ है, बिना किसी तेज आहट के वे सातों लोग धीरे–धीरे उस स्थान पर पहुंचे,लेकिन वहाँ का दृश्य देख वे आश्चर्यचकित रह गये। बिरसा दो तलवारों के साथ वहाँ बैठे थे तथा साली व सुगा मुण्डा की पुत्री चम्पी भोजन पका रहीं थी। वनवासी स्त्रियों की निडरता व समर्पण का यह एक अद्‌भुत स्वरुप था, जहाँ वे अकेले बिरसा की रक्षा के लिए तत्पर थी। वे सातों लोग तुरन्त किसी भी प्रकार की गतिविधि करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे अतः उन लोगों ने उचित समय की प्रतीक्षा की और जब बिरसा और साली व चम्पी गहरी नींद में निश्चिन्त होकर सो रहे थे तभी बिरसा पर प्रहार किया गया। इससे पहले कि बिरसा अपनी तलवार उठा पाते उन्हें चारों ओर से कसकर पकड़ लिया गया। उन्हें बंदगांव में कैम्प डाले डिप्टी कमिश्नर के हाथ देकर उन लोगों ने 500 रुपये की राशि प्राप्त की। यह भारत का अभाग्य ही है जहाँ भारतीय वीरों को पकड़वाने के लिए ब्रिटिश सरकार को अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा क्योंकि कुछ अपने ही लोभवश अंग्रेजो की सहायता के लिए सरलता से तैयार हो गये। लेकिन वनवासी महिलाओं ने सदैव सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने वाली शक्तियों का मुकाबला किया और बिरसा उलगुलान में संघर्ष को बनाये रखा।

jkuh f’kjkef.k

संथाल संघर्ष के विकराल स्वरुप को निर्मित करने में विभिन्न वनवासी संघर्षों की एक श्रृंखला है जिसमें रानी शिरोमणि की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिले में चुआड़ वनवासी किसानों की रानी शिरोमणि पारम्परिक हथियारों से सुसज्जित एक कर्मठ व कुशल योद्धा की भाँति जब अपने क्षेत्र के वनवासी किसानों को सम्बोधित करती थीं तो वनवासी समाज के प्रत्येक व्यक्ति का रोम–रोम आन्दोलित हो उठता था। रानी शिरोमणि ने सन् 1798 में अंग्रेजों के विरुद्ध वनवासी किसानों के प्रथम संघर्ष का नेतृत्व किया था। उन्होने एक संगठनकर्ता के रुप में 124 गांवों के पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं के भी अपने आन्दोलन में जोड़ा।

उस समय ब्रिटिश सरकार सामान्य समाज पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने के साथ ही जमींदारों के साथ भी मित्रवत् सम्बन्ध बनाये रखना चाहती थी। अतः सरकार ने वनवासी समाज की भूमि जमींदारों को विभिन्न माध्यमों से देना प्रारम्भ कर दिया। वनवासियों पर आर्थिक दबाव सुनिश्चित करने के लिए जंगल महल क्षेत्र पर विभिन्न प्रकार के टैक्स लगाये जाने लगे। अंग्रेजों के इन निर्मम अत्याचारों से आहत भूमिहीन वनवासियों के मध्य आन्दोलन की भावना को जागृत करने का कार्य रानी शिरोमणि ने किया। उन्होंने सार्वजनिक रुप से यह घोषणा की कि ''कोई भी वनवासी न सरकार व जमींदारों को जमीन हड़पने देगा और न ही उन्हे किसी भी प्रकार का टैक्स देगा। यदि कोई कर माँगने के लिए आये तो उसे तत्काल समाप्त कर दो।'' रानी शिरोमणि के इन वाक्यांशों ने वनवासी समाज में जोश व साहस को भर दिया। परिणामस्वरुप रानी शिरोमणि के नेतृत्व में गाँवों के लोगों को एकत्रित कर जमींदारों के घरो पर हमले किये गये तथा भूमि सम्बन्धित दस्तावेजों को नष्ट कर दिया गया।

रानी शिरोमणि ने योजनाबद्ध रुप में संघर्ष की रणनीति बनायी। वनवासी योद्धाओं की सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए सर्वप्रथम एक विशाल दुर्ग व प्रशिक्षित सेना बनायी गयी। तत्पश्चात् दिनांक 16, 17 मार्च सन् 1798 को अंग्रेजो पर चुआड़ आक्रमण की योजना बनाई गई। 16 मार्च 1798 को आनन्दपुर पर हमला किया गया जिसमें बड़ी

संख्या में अंग्रेज सैनिक मारे गये। इसके बाद 17 मार्च को मिदनापुर पर हमले की पूरी तैयारी थी, लेकिन आनन्दपुर में हुए आमने–सामने के युद्ध में रानी शिरोमणि व उनके वनवासी योद्धाओं के अदम्य साहस व वीरता को देख ब्रिटिश सरकार भयभीत थी। अतः मिदनापुर पर वनवासी हमले की सूचना से डरे वहाँ के कलेक्टर ने कर्नल डॉन को पत्र लिखकर वहाँ से सरकारी खजाना ले जाने को कहा। साथ ही रेवेन्यू बोर्ड को चेतावनी दी कि यदि चुआड़ विद्रोह को यहीं नहीं दबाया गया तो जंगल महाल में ब्रिटिश शासन कठिन हो जायेगा। अंग्रेज अधिकारियों ने सरल वनवासी समाज को भटकाने के लिए कूटनीति का सहारा लिया और अंग्रेज समर्थक जमींदारों ने मिदनापुर में यह झूठी खबर फैला दी कि मिदनापुर में हजारों की संख्या में सैनिक आ गये हैं। इस खबर से अवगत होकर रानी शिरोमणि व चुआड़ वनवासी सेना ने युद्ध को कुछ दिनों के लिए स्थगित करने का निर्णय लिया। अपनी योजना में सफलता प्राप्त करके दूसरे दिन से ही अंग्रेजों ने दमनकारी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। 6 अप्रैल 1799 को रानी शिरोमणि की जमींदारी के किले ''कर्णगढ़'' और आवास गढ़ पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। रानी को कैद कर लिया गया।

रानी शिरोमणि को अंग्रेजो ने कैदकर लिया है, यह खबर दावानल की भॉंति वनवासियों मे फैल गयी। अंग्रेजो ने रानी को जिस किले मे कैद कर रखा था उसे कुछ समय मे ही वनवासी स्त्रियों, पुरुषो व बच्चों ने चारों ओर से घेर लिया। वनवासी योद्धाओं की इतनी बड़ी संख्या के समक्ष अंग्रेज भी किले से बाहर आने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। किले में भोजन व पानी का आवागमन बन्द हो गया था, अतः भूख प्यास से परेशान ब्रिटिश सेना ने रानी को मुक्त करके किले को खाली कर दिया। वनवासियों की संगठित शक्ति के समक्ष अंग्रेजो को झुकना पड़ा था।

इस घटना के बाद ब्रिटिश सरकार ने वनवासियों की इस निःस्वार्थ संगठन में फूट डालने की योजना बनायी। प्रलोभन व भय दिखाकर चुआड़ समर्थक जमींदारों व सरकारी कर्मचारियों को इस विद्रोह के विरुद्ध कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने सामान्य चुआड़ वनवासियों को रानी से अलग करने के लिए घोषणा की कि वह सभी चुआड़ों की भूमि वापस कर देगी तथा उन पर लगाया जाने वाला कर भी समाप्त कर दिया जायेगा। अतः विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार रानी शिरोमणि के साथी चुआड़ वनवासियों को अलग कर दिया गया। संगठन के कमजोर होने पर रानी की शक्ति का कम होना स्वाभाविक था। अतः उचित अवसर देखकर अंग्रेजों ने धोखे से रानी शिरोमणि को मार दिया। रानी की मृत्यु के पश्चात् चुआड़ विरोध भी छिन्न–भिन्न हो गया लेकिन संघर्ष की भावना वनवासियों के मध्य प्रज्ज्वलित रही। इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध वनवासी संघर्ष में वनवासी स्त्रियों की भूमिका अद्वितीय है जिन्होंने मातृभूमि के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया।

jruh [kfM;k dk l?k"k

तेलंगा खड़िया छोटानागपुर क्षेत्र में हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण भूमि सम्बन्धी समस्याओं के विरुद्ध ब्रिटिश प्रशासन से संघर्ष करने वाले वनवासी योद्धा थे जिन्होंने बहुत ही कम उम्र में अपनी पत्नी रतनी खड़िया के साथ अंग्रेजों का सामना किया। वनवासियों का स्वायत्त स्वशासन ब्रिटिश प्रशासन द्वारा लगाए गए विभिन्न नियमों के कारण बाधित हो रहा था। अब साहूकारों तथा जमीदारों का हस्तक्षेप भूमि सम्बन्धी विषयों में बढ़ने लगा था परिणामतः शीघ्र ही वनवासियों को अपनी भूमि से अलग होकर उस पर राजस्व देना पड़ा। इसका मुख्य कारण वनवासी किसानों की ऋणग्रस्तता थी जिसका पूरा लाभ साहूकारों ने उठाया। वनवासी समाज की स्थिति इतनी दयनीय थी कि ऋण चुकाने की बाध्यता नई पीढ़ी को विरासत में ही प्राप्त हो जाती थी। इन विषम परिस्थितियों व अन्याय के सूत्रधार ब्रिटिश प्रशासन व उनके बिचौलियों के विरुद्ध तेलंगा खड़िया ने संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। सन 1806 में जन्मे तेलंगा खड़िया का विवाह सन 1846 में रतनी के साथ हुआ जोकि तेलंगा की भांति संघर्षशील थी। विवाह होने के पश्चात् तेलंगा खड़िया के संघर्ष में सहभागी बनी।

अक्षर ज्ञान से अनभिज्ञ वनवासी शिक्षक शस्त्र विद्या में परांगत थे। खेती बाड़ी का काम के साथ ही अपने अनुयायियों को गदका, तीर और तलवार चलाने की शिक्षा दिया करते थे। सम्मान देने की पराकाष्ठा के उदाहरण हमें सहज ही वनवासी समाज में प्राप्त हो जाते है। वनवासी शिक्षक अपने शिष्यों को पारम्परिक हथियारों का

प्रशिक्षण देने से पूर्व धरती माता, सरना माता तथा सूर्य भगवान् की आराधना करवाते थे। पूर्व की दिशा में ध्वज लगाकर आराध्य देवों की प्रार्थना के पश्चात् युध्याभ्यास करते हुए तेलंगा खड़िया अपने वनवासी साथियों को ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध संगठित होकर डटे रहने के लिए प्रेरित करते थे। इस संघर्षपूर्ण कार्य में रतनी खड़िया अपने पति का साथ देते हुए तीर और तलवार चलाने का अभ्यास करती और युद्ध के लिए तैयारी हेतु गाँव–गाँव में जन जागरण के कार्यों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करती थी। रतनी खड़िया अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति को समझ चुकी थी। अतः उन्होंने अपने समाज को संगठित करने के लिए स्त्री व पुरुषों को एक साथ मिलकर संघर्ष के लिए प्रेरित किया। तेलंगा खड़िया की विभिन्न संघर्षात्मक गतिविधियों में रतनी खड़िया ने सहायता की थी। परिणामस्वरूप तेलंगा खड़िया के गुप्त दौरे विभिन्न गांवों में सहजता से पूर्ण हो सके थे।

ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध युद्ध के लिए सेना निर्माण का कार्य भिन्न–भिन्न स्थानों पर रतनी खड़िया के जोड़ी पंचायत के गठन द्वारा पूर्ण किया गया जिसमें रतनी खड़िया का महत्वपूर्ण योगदान था। तेलंगा खड़िया जंगल के अज्ञात स्थानों से अपने संचालन को नियंत्रित करता था। एक ग्राम में जब तेलंगा खड़िया जोड़ी पंचायत की बैठक आयोजित कर रहा था तब जमीदार के एजेंटों द्वारा उसकी उपस्थिति की सूचना ब्रिटिश अधिकारियों को दे दी गई। फलतः सभा स्थल पर ही तेलंगा खड़िया को गिरफ्तार कर लोहार दंगा जेल भेज दिया गया। कुछ समय पश्चात् कोलकाता जेल में उन्हें 18 वर्ष की कैद हुई। जेल से छूटने के बाद उन्होंने इस आंदोलन को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। 23 अप्रैल 1880 को प्रशिक्षण सत्र प्रारंभ करने से पूर्व सिसई अखाड़े में दैनिक प्रार्थना के समय ब्रिटिश एजेंट बोधन सिंह ने घात लगाकर उन पर गोलियां बरसा दी। उसके अनुयाई शीघ्र ही उसके पार्थिव शरीर को जंगल की ओर ले कर भाग गए तथा कोयल नदी पार करने के बाद उन्होंने गुमला जिले के सोसो नीम टोली गांव में पार्थिव शरीर को दफन किया गया जिसे आज भी तेलंगा टोपा तांड के नाम से जाना जाता है। तेलंगा की मृत्यु के बाद भी जोड़ी पंचायत का कार्य बंद नहीं हुआ क्योकि रतनी खड़िया ने गांव–गांव में बैठकों का आयोजन प्रारंभ कर दिया था। ग्राम जागरण का यह कार्य अंत तक ब्रिटिश सत्ता के लिए समस्या बना रहा।

ब्रिटिश अधिकारी डब्लू. जी. आर्चर ने लिखा है कि संथाल परगना में औरतें मांझी परगना भी थी। कोल्हान क्षेत्र में स्थित स्त्रियां मानकी व मुंडा भी होती हैं। अतः अंग्रेजों ने संघर्ष को कुचलने के उद्देश्य से महिलाओं के मानकी या प्रधान होने पर रोक लगाई। ब्रिटिश सत्ता द्वारा लगाए गए इस प्रतिबन्ध से यह प्रमाणित होता है कि उन्हें यह विश्वास था कि जब तक वनवासी समाज के प्रशासन व संघर्ष की गतिविधियों में से स्त्री शक्ति का हस्तक्षेप नहीं हटाया जाएगा, तब तक वनवासी समाज को तोड़ पाना असंभव होगा। ब्रिटिश शासन की इस कूटनीति को समझने में सरल वनवासी असफल रहा और शीघ्र ही सम्पूर्ण जंगल में औपनिवेशिक व सामन्ती आक्रांताओं का सशक्त हस्तक्षेप प्रारम्भ हो गया।

lFkky gy e: ukjh 'kfä

मुगल सम्राट व ईस्ट इंडिया कम्पनी के दोहरे शासन के दौरान सन 1770 में पड़े बंगाल अकाल से कम्पनी के राजस्व को बहुत बड़ी क्षति हुई। अतः 1790 में स्थाई बंदोबस्त अधिनियम के द्वारा इस हानि की पूर्ति की गयी। अंग्रेजों का इस जमीदार समर्थित योजना के कारण जंगल महल और राज महल पहाड़ियों में संथाल पलायन करने लगे। सन 1810 मे संथालों की गतिविधियों को दुमका क्षेत्र में देखने के पश्चात् ब्रिटिश अधिकारी वार्ड ने सरकार को पत्र लिखा कि "पहाड़िया लोग जंगल साफ करने में उतने सहायक नहीं हो सकते जितने कि संथाल। संथाल सीधे–साधे होते हैं और मात्र अच्छा व्यवहार चाहते हैं"।

अंग्रेज वनवासी समाज की संगठित शक्ति पर प्रहार करना चाहते थे जिससे कि उनके प्रतिरोधों को सरलता से दबाकर उन पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। अतः ब्रिटिश निर्देशानुसार संथालों ने गैर संथाल साहूकारों से लोहे के औजार, बीज, अनाज और बैलों को व्यक्तियों और परिवारों के रूप में खरीदने के लिए ऋण लिया जबकि परंपरा अनुसार वे सामूहिक रूप में भूमि पर कार्य करते थे। जॉन पेरी वुड के निर्देशन में 1832–33 में "दामन–ए–कोह" का रेखांकन हुआ तथा 1837–38 में जेम्स पोटेंट को यहां का अधीक्षक बनाया गया। इनका मुख्य

कार्य भू बंदोबस्त करना, लगान वसूल था, लेकिन उसने ब्रिटिश नीति के अनुसार संथाल का हितैषी बनकर जमीदारों व महाजनों को मजबूत किया। सन् 1838 से 1851 के मध्य "दामन–ए–कोह" क्षेत्र से ब्रिटिश अधिकारियों को संथाल गाँव द्वारा 21 गुना अधिक राशि कर रूप में प्राप्त हुई। राजस्व की इस असीमित बढ़ोतरी के पीछे था महाजनों व जमीदारों का शोषण, जिन्हें भ्रष्ट पुलिस तथा ब्रिटिश प्रशासन द्वारा संरक्षण प्राप्त था। इन सभी गतिविधियों का परिणाम था संथाल हूल। ब्रिटिश लेखक ई.जी. मान के अनुसार "महाजनों के लोभ व लूटने की प्रवृत्ति, कर्ज के लिए व्यक्तिगत और पीढ़ी दर पीढ़ी दासता की बर्बर प्रथा, पुलिस का भ्रष्टाचार, अत्याचार तथा महाजनों के कुकर्मों में सहायता व न्यायालय में न्याय की असंभवना ने संथालों को संघर्ष के लिए विवश किया था। भूमि के अभाव में कर्ज न चुका पाने पर कमयौती तथा हरवाही प्रथा के अंतर्गत संथाली को महाजनों का प्रत्येक काम करना पड़ता था तथा उसके खेत में हल भी चलाना होता था। संथाल औरतों का अपहरण तथा कुकर्म के बाद हत्या जैसी घटनाओं ने वनवासी समाज के आत्म गौरव आत्मसम्मान को विकृत किया था"। सन् 1854 में "दामन–ए–कोह" क्षेत्र में रेलवे परियोजना के कार्य के समय हंटर ने लिखा था कि "रेलवे लाइन में जो अंग्रेज कर्मचारी काम करते थे वे बिना कीमत दिए संथाल आदिवासियों से बलपूर्वक बकरा–बकरी मुर्गा–मुर्गी आदि छीन लेते थे। अगर संथाल विरोध करते थे तो यह गोरे उन पर अत्याचार करते थे। पुलिस द्वारा दो संथाली स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार किया गया और एक संथाल की हत्या कर दी गई थी"।

इन सभी परिस्थितियों ने ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध आक्रोश को जन्म दिया जिसका परिणाम संथाल हूल के रूप में सामने आया। इस संथाल हूल के नायक थे सिध्दों कानो,चांद भैरव व उनकी दो बहने फूलों और झानों। एक योद्धा की भांति इन दोनों वनवासी नारी शक्तियों ने ब्रिटिश सेना का सामना किया था। फूलों और झानों अंग्रेजों के शिविर में जाकर 21 सिपाहियों की हत्या की थी। इनकी इस बहादुरी को आज भी संथाल लोकगीतों में गौरव के साथ याद किया जाता है। वनवासी महिलाओं ने गाँव–गाँव में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मोर्चाबंदी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। खूटकट्टी जमीन व जंगल पर अपने पारम्परिक अधिकार के लिए विस्थापन विरोधी आंदोलन में संथाली महिलाओं की भूमिका ने ब्रिटिश सत्ता की नींव हिला दी थी।

mjko lekt dh efgyk,a

सन् 1914–15 के लगभग छोटा नागपुर में उरांव वनवासी समाज ने 25 वर्षीय युवक जतरा ताना भगत के नेतृत्व में ताना आंदोलन प्रारंभ किया था। जतरा भगत की पत्नी देवमनी भी इस आंदोलन की सशक्त स्तंभ थी। जतरा भगत ने उरांव समाज को यह संदेश दिया था कि "असहयोग करो, दिन–रात खेतों में काम करने और धान उपजाने का क्या लाभ। ज़मींदार जितना कुकर्म कर सकता है करता है। गाय बैल चरने नहीं देता, जबरन धान काट लेता है"। उसने अपने उरांव समाज को अंधविश्वास व बुराइयों से दूर रहने का संदेश देते हुए यह मंत्र गायाः

"ताना बाबा, ताना, भूतनी के ताना दाना
ताना बाबा,ताना टान, टून ताना"।

अर्थात् हे परमपिता ! खींचो बाबा खींचो, भूतों से दूर हमें खींचो। हे परमपिता! खींचो बाबा खींचो, चारों तरफ भूत छिपे हैं खींचो। इस प्रकार उसने भूत प्रेत व बलि देने की प्रथा पर अंकुश लगाने का प्रयास किया। मांस–मदिरा से दूर रहकर अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

शीघ्र ही जतरा भगत के आंदोलन का प्रभाव वनवासी समाज में दिखने लगा। जतरा भगत ने घोषणा कि दिकुयो को जल्द उरांव राज से बाहर कर दिया जाएगा और तब जतरा बाबा पहला उरांव राजा बनेगा। जतरा भगत के इस विश्वासपूर्ण निश्चय से ब्रिटिश सरकार चिंतित हो गई और शांति भंग करने व लोगों को एकत्रित करने के आरोप में 23 अप्रैल 1914 में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। 2 जून 1915 को सरकार ने उसे इस शर्त पर छोड़ दिया कि अब वह अपने धर्म का प्रचार नहीं करेगा, किंतु जेल की यातनाओं के कारण वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सका। जेल के दौरान इस आंदोलन को जतरा भगत की पत्नी देवमनी 'बंधनी' ने बिखरने से बचाया। इसके नेतृत्व में ताना भगत आंदोलन ने अपनी पराकाष्ठा पर पंहुचा था। अब इस आन्दोलन का विस्तार रांची व हजारीबाग

तक हो गया था। देवमनी के नेतृत्व में आन्दोलन अहिंसक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक रूप धारण करने लगा था। 12 फरवरी 1921 को कुडू में 8000 ताना भक्तों ने एकत्रित होकर विशाल सभा का आयोजन किया जिसने अंग्रेजो व जमीदारों में डर पैदा कर दिया था।

fu”d”k

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजों ने दमन में कोई कसर नहीं रखी। अनगिनत वनवासी शहीद हुए, कइयों को काला पानी की सजा हुई और कई फाँसी पर लटका दिए गए। फाँसी, मौतें और सजाओं का लम्बा सिलसिला चला। इसके बाद भी जनजाति अंचल में स्वातंत्र्य की अलख और संघर्ष जारी रहा, जो भारत की आजादी के बाद ही थमा। आज हमें स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में जनजातीय चेतना और युध्द में वीर जनजातियों के बलिदान के लम्बे सिलसिले को नमन करने की आवश्यकता है। हम जानें, समझें और महसूस करें कि हमारे वनांचल के वनवासी बंधुओं के स्वाधीनता के संकल्प, स्वाभिमान और बलिदान की परम्परा से ही हम आज स्वतंत्र भारत में खुली साँस ले रहे हैं।

lUnHk lph

1. गुप्ता रमणिका : *"आदिवासी सौर एवं विद्रोह"* सुरभि प्रकाशन, 2015, नई दिल्ली
2. सिंह अयोध्या : *"भारत का मुक्ति संग्राम"* प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2005
3. राय शरत चंद्रः *"उराव रिलीजन एंड कस्टम्स"* ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985
4. सिंह कुमार सुरेशः *"बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन 1872–1901"* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004
5. मीणा केदार प्रसादः *"आदिवासी विद्रोह"* अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, 2015
6. दास शिव दोषः *"स्वतंत्रता सेनानी वीर आदिवासी"* किताब घर, नई दिल्ली
7. नाग अमित केः "ए लीजेंड इन लाइफ टाइम नीतीश रंजन राय (मुख्य संपादक) चैलेंज ए सागा ऑफ इंडिया स्ट्रगल फॉर फ्रीडम". नई दिल्ली
8. डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर डीः *"द अनल ऑफ रूलर बंगाल"*, कॉस्मो पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1975
9. अप्रिपम्पिल मैथेवः "स्ट्रगल फॉर स्वराज (ए हिस्ट्री ऑफ़ आदिवासी मूवमेंट्स इन झारखण्ड); ट्राइबल रिसर्च एंड ट्रेनिंग सेंटर, चाईबासा, झारखण्ड
10. मीना केदार प्रसादः *"आदिवासी संघर्ष का इतिहास"*; दीपक कुमार /देवेन्द्र चौबे (सम्पादक); हाशिये का वृतांत; आधार प्रकाशन ,पंचकुला ,हरियाणा , 2011

****